

શ્રીહિત ચાચા વૃંદાવન દસ જી મહારાજ કૃત

# શ્રી કરુણા વૈલી



જી હિત પ્રભુ વૃંદાવન દસ જી મહારાજ

જી હિત પ્રભુ વૃંદાવન દસ જી મહારાજ

જી હિત પ્રભુ વૃંદાવન દસ જી મહારાજ

©@shrinitradhavalabhtal

8168100515, 9890455777

www.shrinadhuvalabhtal.com

श्री व्यास सुवन करुणा अब करौ, मो सिर चारु चरण रज धरी ।  
श्री हितरूप कृपा की आशा , याचत उर धरि बडौ हुलासा ॥१॥

करुणा निधि तुम नाम कहावे, मोसो दीन चरन रति पावे ।  
प्रथम करो करुणा गुरु राज, जिनको शरण गहे की लाज ॥२॥

पुनि ये रसिक सुदृष्टि निहारो, मोपे करुणा सदा विचारो ।  
करुणा दया साधू गुरु करि हैं, मो उर ताप तिमिर सब हरि हे ॥३॥

श्रीगुरु साधु जाहि अपनावे, तेई जन हरि के मन भावे ।  
जिनको विरद विदित जग माँही, अभय करे पकरे जा बाँही ॥४॥

हैं करुणा निधि करुणा कीजे, अब निज शरण रावरी दीजे ।  
ऐसी सदा विचारो चितही, हो तव कृपा मनावत नितही ॥५॥

विनती सुनी साधु मन रंजन, तुम पद कमल सकल दुख गंजन ।  
अहो नाथ ! तुम दीन दयाला, अपने को कीजे प्रतिपाला ॥६॥

मो करनी नहि चित में धरिये, अपनी कृपा ओर हि ढरिये ।  
जो मम औगुन ग्रहण करोगे, अपना विरद आप विसरोगे ॥७॥

करुणामय यह विरद बढ़ावो, जो हमसे दीनन अपनावो ।  
अहो कृष्ण पद रति अब पाऊँ, जगल केलि कल कीरति गाऊँ ॥८॥

देहु कृष्ण यह भक्ति सुधन हे, तुम दासन के हिय दृढपन हे ।  
भक्तन की अभिलाषा दायक, हो राधापति तुम सब लायक ॥९॥

देहु देहु करुणा करि पद रति, तुम समान को विभुवन में पति ।  
हे व्रज ईश सीस दीजे पद, तुम ही परम दया करुणा हृद ॥१०॥

करो अनुग्रह अपने जन को, जैसे गौ चाहत बच्छन को ।  
यो हरि देहु भक्ति वरदाने, जा कीरति को जगत बखाने ॥११॥

हे गोकुल विधु । बदन दिखावो, नैन चकोरन सुधा पिवावो ।  
निरस्त्रि सफल हे हे दृग मेरे, पावन गुण गाऊँ मे तेरे ॥१२॥

अहो अहो त्रिभुवन के स्वामी, तुम हो सब के अंतर्यामी ।  
याते अपनी ओर निहारौ, मेरो दोष न चित में धारौ ॥१३॥

मिलन आस की बेलि निपाई, ऐसी करो जू अफल न जाई ।  
तुम पद दरसन पूरण फल है, दै सतसंगत सींचत जल है ॥१४॥

यह अभिलाषा रहत मन नित है, प्राणनाथ मम आस्त चित है ।  
तुम समर्थ हो दीन महाई, शरण गहे की तुम्हे बड़ाई ॥१५॥

हे व्रज दूल्हा ! नन्द दुलारे ! कब ऐहो दृग आगे प्यारे ।  
नहि जाने किहि छिन दरसौंगे, तपत हिये कब सुख बरसौंगे ॥१६॥

कानन सघन वीथियन माँही, निरखौ प्रिया अंश गरवाही ।  
पूरित नेह वचन सुनि हो जब, श्रवण लाभ फल हरि गनिहौ तब ॥१७॥

हे वृन्दावनचन्द्र विनोदी, देहु दान हो ओटत गोदी ।  
बात तुम्हारी जीवन मेरी, सब विधि पूजो आज सबेरी ॥१८॥



परम दया के मन्दिर तुम हीं, यातें शरण गहत है हमरी ।  
सखी नाथ कृपा करि नैं, अहो कृपा निधि हम नित टैर ॥१९॥

तुम गुण गहर कमल दल लोचन, अपने जन के सब दुख मोचन ।  
है सुन्दरवर तुम हो नगधर, दिजे अभयदान सिर कर-वर ॥२०॥

सुनों कान दे विनती हो हरि, तुमहि सुनाऊ बहुत भौति करि ।  
अपने को सुधि आपु न लीजे, ऐसी कहा निठुरता कीजे ॥२१॥

और बात नहि चितहि विचारो, कृपा द्रष्टि मम ओर निहारो ।  
इहि विधि नाथ तुम्हारी जस है, जो बिसरो तो का मम बस है ॥२२॥

अहो कृष्ण ! जो दास कहावे, सो क्यों जगत मोहि दुख पावे ।  
यह तो बड़ी त्रास आवत है, कृपा अवधि क्यों तौहि भावत है ॥२३॥

कबहुं न करौ दयाल ऐसी अब, चाहत शरण तुम्हारी हम सब ।  
अपने जन की लज्जा गहिवे, बहुत न आवत है प्रभु कहिवे ॥२४॥

जाको अनुग सो न सुधि लेहि, वह न कहावे नाथ सनेही ।  
अगनित दृढ़न्द देह के पथ है, तुम विन टारन को समरथ है ॥२५॥

बार-बार हम हरि यह जाचे, तुम पद छोड़ि अनत नहि राचे ।  
ऐसी सुमति देहु करुणानिधि, कहो प्राणपति मिलिहो किहि विधि ॥२६॥

कब उपजेगी यह मन माँही, राखोगे मोहि चरणन छोहि ।  
मे तो निश्चय यहि करि हे, तुम धो जियमे कहा धरी हे ॥२७॥

खोटो खरो परो जो शरणो, कहा देखिये ताकी करणी ।  
विरद तुम्हारो विदित रसाला, अब तो करे बने प्रतिपाला ॥२८॥

कब ऐहो इन नेननि आगे, कब ये रूप तिहारे पागे ।  
हैं राधापति तुम पद दरसौ, सुजस रावरो गावत सरसौ ॥२९॥

हैं अभिराम श्याम वनवासी, कब परसौ वे पद सुखराशी ।  
अब उर आशा अधिक भई है, तुम धो मनमे कहा ठई है ॥३०॥

देहु न नाथ अनाकनी मोसौ, अपनी व्यथा सुनाई तोसौ ।  
भली लगे सो करिहौ ब्रजपति, मेरे तौ तुम ही हो हरि गति ॥३१॥

अहो जुगल विधु मो दग भूषण, कब सौंचोगे प्रेम पियुषण ।  
कौतुक मिथुन सकल सुख ऐना, बन घन रमत निहारो नैना ॥३२॥

निभृत निकुंज ते निकसो जबही, मेरी द्रष्टि पगेगे तब ही ।  
कब हे हे वह मंगल विधियाँ, आवत युगल अंश भुज धरियाँ ॥३३॥

अब कष्ट कहत परस्पर बानी, सो तौ परम नेह-रस सानी ।  
ताहि सुनत बदले गति तन की, पूजे अभिलाषा सब मन की ॥३४॥

हे सुखरासि दास्य अब पाऊँ, हे प्रभु तुम पद कृपा मनाऊँ ।  
कानन कमली केलि विलोको, निरखत पलक धरनि गति रोको ॥३५॥

ऐसो बानक बनि हे कबहूँ, करुणामय विनती सुन अबहूँ ।  
अति अभिराम श्याम सुखदाता, तुम पतितन पावन विख्याता ॥३६॥

अहो अकिंचन जन-मन भावन, भक्तन उर आनन्द बढ़ावन ।  
दासन भीर सदा लागत हो, अब कछु नाथ दूर भागत हो ॥३७॥

जो तुम कहो करम तुम छोटे, तो तुम हरि का विधि हो मोटे ।  
करमन के बस तुम जन होई, तो तुम भजन करे क्यों कोई ॥३८॥

जो तुम बड़े करम ठहरावो, तो तुम क्यों जग-ईश कहावो ।  
जाके टंड जगत ये नाँचे, सोई धनी कहावे साँचे ॥३९॥

जो हरिदास करम बस कहिये, तो प्रभु तुमहि न ऐसी चाहिये ।  
नीति अनीति आपही देखो, हमको याको बड़ी परखी ॥४०॥

उत्तम करमन करि जो तरिये, तो तुमको काहे अनुसरिये ।  
ये हठ छाँडि देउ अब हरि किन, करमन तार बहावो प्रभु जिन ॥४१॥

साधू सभा के तुम ही मंडन, करो कटाक्ष कर्म होय खंडन ।  
हो ब्रजनाथ साथ देउ मेरो, ऐचो पकरि बाँहि हो तेरो ॥४२॥



हो भूल्यो संसार-विषय-वन, भ्रमत फिरौ पाउँ पीड़ा तन ।  
तुम सौ दयाल देखि छिटकावै, कहौ कृष्ण को पार लगावै ॥४३॥

यह गति देखि जौ न कसके मन, तौ हरि कहा कहाये तो जन ।  
अपने को स्वामी जौ तजिहै, लेह विचार कौन हरि लजिहै ॥४४॥

जो अर्गतिन की गति न करि हे, कहाँ कृष्ण को फेट पकरि हे ।  
अब चितवो रंचक सुद्रष्टि कर, अखिल भुवन तो जाय नाथ तर ॥४५॥

जाकौ जतन कहा करीवै हे, रंचक दया हृदय धरिवै हे ।  
तुम तो दीनदयाल-प्रभु अति, ह्री हित रूप चरण पाऊँ रति ॥४६॥

तुम हरि उर आनन्द भरन हो, भक्तन की आरति जु हरण हो ।  
अब न गहर कीजै इत देखो, जैसे टरै करम की रेखो ॥४७॥

हो दुख दमन रसिक राधापति, भक्तिदान दीजै उदार-मति ।  
दाता देत कछु नहि रखै, श्रीगुरु-सन्त भागवत भाखै ॥४८॥

देहु देहु पद सेव सदाई, तुम दानी हो कृपण महाई ।  
सब जुग माहि विदित यह गाथा, जो अनाथ सो किये सनाथा ॥४९॥

ताते विरट पुरातन नहिये, तुमसो बार बार हरि कहिये ।  
वृन्दावन हित रूप रावरे, कब परी हो मम द्रष्टि सांवरे ॥५०॥

सधा रसिक कहावो नागर, भक्तन की गति करुणा सागर ।  
वरद सुनाई बेली करुणा, अब तो नाथ कृपा दिस ठरुणा ॥५१॥

हो नहि लोक भ्रमन ते डरोई, एक बात को संशय करोई ।  
बिसरी जिन उर ते भगवंत, इच्छा बस तन धरो अनन्त ॥५२॥

जो कोउ जाकी शरणे-आवे, यथापि ओगुनी दण्ड न पावे ।  
अहो शरणागत-पालक गिरधर, अब मो लाज राख सुन्दरवर ॥५३॥

सती चढ़ी सर अग्नि न जारे, कहो नाथ वह कहाँ पुकारे ।  
प्यासे को जल नदी न देई, तो हरि कहो कौन सुधि लेई ॥५४॥

प्रफुलित कमल रोष रवि टानै, इहि दुख वारिज कहाँ बखानै ।  
चन्द्र चकोरनि ते दूर रहि है, हो हरि व्यथा कहाँ वह कहि है ॥५५॥

दीपक मन्दिर हरे न तमको, तो प्रभु तुम विसरावो हमको ।  
जो जल काठ न तरे गुसाई, तरुवर बैठन देत न छाई ॥५६॥

सुनो प्राणपति तो कहा बस है, जोपे उन मन धरयो विरस है ।  
ये व्रत तजे तो अचरज नाही, पे न संभवे प्रभु तुम मांही ॥५७॥

अहो कृष्ण अब करो न ऐसी, जैसी तुम जु विचारो तेसी ।  
नेक सुदृष्टि करी मम ओरी, कारज होय बात यह थोरी ॥५८॥

हे बलवीर धीर मति पनके, रक्षक सदा आपने जनके ।  
बाहिमाम शरणागति आयो, त्याग न उचित जु भृत्य कहायो ॥५९॥

सुनो कान दे कानन वासी, अब जिन जगत करावो हाँसी ।  
तुम जु ज्ञान घन त्रिभुवन ईसो, अभय कर कमल धरो मम सीसो ॥६०॥

मैं विनती प्रभु करी घनेरी, कही रुचि देनी प्रेम पहेरी ।  
सुनके नाथ धरो मन मौही, जैसे पर्यो रहो पद छाँही ॥६१॥

तुम लायक दायक सबही सुख, दर्शाओ काहे न सुन्दर मुख ।  
पाउँ यह प्रसाद शोभा-घर, ब्रजपति नन्दन जो राधावर ॥६२॥

श्रीहरिवंश प्रताप ते, वरणी करुणा-बेलि ।  
ब्रजभूषण राधा धनी, दरसावो रस-कैलि ॥  
सम्बत सै दस आठ गत, चार वरष उपरन्त ।  
कृष्ण दास अभिलाष हित, कथी सुनौ हरि सन्त ॥  
जेठ वटी पाँचे सु दिन, बलि हित रूप विचार ।  
हरि गुरु साधु कृपा करि, वरन्यो यह सुखसार ॥  
दिनबन्धु करुणा अवधि, भक्तवत्सल यह नाम ।  
वृन्दावन हित लेउ सुधि, विरट बढे ज्यो श्याम ॥

॥इति श्रीकरुणाबेली चाचा वृन्दावनदासजी कृत सम्पूर्णम् ॥

